गाँव एवं समाज : गाँधी की दृष्टि में

विवेकानन्द तिवारी
इतिहास विभाग,
गांधीवादी चिंतक एवं
स्वतंत्र लेखक

घनश्याम दूबे
इतिहास विभाग,
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय,
छत्तीसगढ़

सारांश

महात्मा गाँधी एक महान चिन्तक, महात्मा, सत्यपुरुष, धर्मज्ञ, तत्ववेत्ता, समाज–सुधारक समाज संगठक, स्मृतिकार, व्याख्याता तथा कर्मयोगी थे। उनके विचारों का अध्ययन विविध रूपों में किया जाता रहा है और किया जाता रहेगा। महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ही देश आजाद होने के बाद भारत का विकास कैसा होगा, पर विचार प्रकट किया था। उनके विचारों का संग्रह विस्तार से 'ग्राम स्वराज' नामक पुस्तक में है। स्वतंत्र भारत के विकास की इसी दिशा के बारे में महात्मा गाँधी से नेहरू के मतभेद थे। नेहरू जी पश्चिमी अवधारणा पर देश का विकास चाहते थे। जबकि महात्मा गाँधी भारत की संस्कृति को ध्यान में रखकर भारत के लिए उपयोगी मॉडल चाहते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश के प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू जी ने गाँधीजी के ग्राम आधारित विकास के विचारों को नकार दिया और पश्चिमी पूंजीवादी और समाजवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था का नया मॉडल महानोलाविस मॉडल के नाम से शुरू किया।

मुख्य शब्द : चिन्तक, स्मृतिकार, तत्वेत्त, अवधारणा, समाजवादी अर्थव्यवस्था

प्रस्तावना

भारत गाँवों से मिलकर बना है, लेकिन हमारे प्रबुद्ध वर्ग ने उनकी अपेक्षा की है.... गाँवों का जीवन नगर के जीवन की नकल या उसका पुछल्ला नहीं होना चाहिए। शहरों को चाहिए कि वे गाँवों की जीवन–पद्धति को अपनाएँ और गाँवों के लिए अपना जीवन दें।[1]

ग्राम–स्वराज की अधिरचना

गाँधीजी ने ग्राम स्वराज के बारे में लिखते हुए कहाः स्वाधीनता की जो तस्वीर मेरे मन में है, उसमें ग्राम समुदाय को इकाई माना जाएगा। स्वाधीनता की अधिरचना ग्राम इकाई के ऊपर खड़ी नहीं की जाएगी जिससे कि वे 40 करोड़ लोग कुचल न जाएं जो इस देश का आधार हैं....।

ग्राम इकाई की जो धारणा मैंने बनाई है उसके अनुसार वह एक सुदृढ़तम इकाई होगी। मेरी कल्पना के ग्राम में लगभग 10000 की आबादी होगी। यदि ऐसी इकाई का संगठन आत्मनिर्भरता के आधार पर किया गया तो वह बहुत ही अच्छा परिणाम प्रदर्शित कर सकती है।[2]

आज हमारे सामने खतरा यह है कि कहीं हम अपने हाथों का इस्तेमाल करना न भूल जाएं। यदि हम यह भूल गए कि जमीन कैसे खोदी जाती है और मिट्टी की देखभाल किस तरह की जाती है तो समझिए हम स्वयं को भूल गए। यदि आप यह समझते हैं कि केवल शहरों की सेवा करके ही आप अपने मंत्री पद को सफल सिद्ध कर सकते हैं तो आप यह भूलते हैं कि भारत वस्तुतः अपने 7 लाख गाँवों में बसता है। आदमी को सारी दुनिया मिल जाए, लेकिन बदले में उसे अपनी आत्मा दे देनी पड़े तो उसके पास बचा ही क्या।[3"]

गाँधी जी का कहना था–"सच्चा भारत उसके 7 लाख गाँवों में बसता है। यदि भारतीय सभ्यता को एक स्थायी विश्व व्यवस्था के निर्माण में अपना पूरा–पूरा योगदान करना है तो गाँवों में बसने वाली इस विशाल जनसंख्या को.. ...फिर से जीना सिखाना होगा।[4"]

उन्होंने कहा–आज हमारे गाँव जिन तीन बीमारियों के चंगुल में हैं, वे हैं; (अ) सामूहिक स्वच्छता का अभाव, (ब) अपर्याप्त आहार, (स) जड़ता.....। ग्रामवासियो को स्वयं अपने कल्याण में रूचि नहीं है। वे सफाई के आधुनिक तरीकों की खूबियां नहीं देख पाते। वे अपने खेतों को जोतने या अरसे से चले आ रहे मेहनत के कामों के अलावा कोई और काम करना नहीं चाहते। यह कठिनाइयाँ वास्तविक और गंभीर हैं। लेकिन हमें इनसे घबराना नहीं चाहिए।

हमें अपने ध्येय में अदम्य आस्था होनी चाहिए। हमें लोगों के साथ धीरज से पेश आना चाहिए। अभी हम स्वयं ही ग्राम कार्य में नौसिखिये हैं। हमें पुरानी बीमारियों का इलाज करना है। अगर हममें धैर्य और अध्यवसाय होगा तो हम बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को पार करे सकेंगे। हम उन परिचारिकाओं की

तरह से हैं जिन्हें अपने रोगियो को इसलिए छोड़कर नहीं चले जाना चाहिए कि वे असाध्य रोगों से ग्रस्त हैं।[5]

समाज–सेवा : गाँधी–दृष्टि

समाज सेवा सम्बन्धी अपनी दृष्टि गाँधीजी ने भली–भाँति स्पष्ट की है :– समग्र ग्राम–सेवक का अपने गाँव के प्रत्येक निवासी से परिचय होना चाहिए और उससे जितना बन पड़े उतनी सेवा ग्रामवासियों की करनी चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि वह सारा काम अकेले ही कर सकता है। वह ग्राम वासियों को यह बताएगा कि वे किस प्रकार अपनी सहायता स्वयं कर सकते हैं और उन्हें जो सहायता एवं सामग्री की आवश्यकता होगी, उसे उनके लिए उपलब्ध कराएगा। वह अपने सहायकों को भी प्रशिक्षित करेगा। वह ग्रामवासियों के मन को इस तरह जीतने का प्रयास करेगा कि वे उसके पास परामर्श के लिए आने लगेंगे।

मान लीजिए मैं एक कोल्हू लेकर किसी गाँव में जाकर बस जाता हूँ तो मैं 15–20 रूपये माहवार कमाने वाला कोई साधारण तेली नहीं होऊँगा। मैं तो एक महात्मा तेली होऊँगा। मैंने यहाँ महात्मा शब्द का प्रयोग विनोद के लिए किया है; मेरा असली आशय तो है कि तेली के रूप में मै ग्रामवासियों के अनुकरण के लिए एक आदर्श बन जाऊँगा। मैं ऐसा तेली होऊँगा जिसे गीता और कुरान की जानकारी है। मैं इतना पढ़ा–लिखा होऊँगा कि उनके बच्चों को शिक्षा दे सकूँ। यह बात और है कि मुझे इसके लिए शायद समय न मिले। तब गाँव वाले मेरे पास आएंगे और मुझसे कहेंगे, मेहरबानी करके हमारे बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कर दीजिए। तब मैं उनसे कहूँगा। ''मैं आपके लिए एक शिक्षक की व्यवस्था कर सकता हूँ, पर आपको उसका खर्च बर्दाश्त करना होगा।'' और वे खुशी–खशी इसके लिए तैयार हो जाएंगे।

मैं उन्हें कताई सिखाऊँगा और जब वे मुझसे किसी बुनकर को लाने के लिए आग्रह करेंगे तो मैं उन्हें उसी प्रकार बुनकर लाकर दूँगा जिस प्रकार मैंने उन्हें शिक्षक लाकर दिया है। यह बुनकर उन्हें सिखायेगा कि वे अपने कपड़ा किस प्रकार बुन सकते हैं। मैं उन्हें स्वास्थ्य रक्षा और सफाई के महत्व के प्रति जागरूक करूँगा और जब वे मुझसे कहेंगे कि मैं उनके लिए एक मेहतर की व्यवस्था कर दूँ तो मैं कहूँगा, ''मैं आपका मेहतर हूँ और आपको इस काम की शिक्षा मैं दूँगा।''

समग्र–ग्राम–सेवा की मेरी धारणा यह है। आप कह सकते हैं कि इस जमाने में मुझे ऐसा तेली कहीं नहीं मिलेगा जैसा कि मैंने ऊपर वर्णन किया है। मेरा उत्तर होगा कि यदि ऐसा है तो हम इस जमाने में अपने गाँवों के सुधार की आशा नहीं कर सकते.....आखिर, ''जो आदमी तेल–मिल चलाता है वह तेली तो होता ही है। उसके पास पैसा तो होता है। सच्चा ज्ञान मनुष्य को नैतिक प्रतिष्ठा और नैतिक शक्ति देता है। ऐसे व्यक्ति से हर कोई परामर्श लेना चाहता है।[6]

गाँवों में नवजीवन के संचार के लिए

गाँवों में नवजीवन के संचार के लिए कार्यक्रम की रूपरेखा रखते हुए गाँधीजी ने कहा– ''सभी गाँवों का सर्वेक्षण कराया जाएगा और उन चीजों की सूची तैयार कराई जाएगी जो कम से कम या किसी तरह की सहायता के बिना स्थानीय रूप से तैयार की जा सकती हैं और जो या तो गाँवों के ही इस्तेमाल में आ जाएंगी या जिन्हें बाहर बेचा जा सकेगा। उदाहरण के लिए, कोल्हू से पेरा गया तेल और खली, कोल्हू से पेरा गया जलाने का तेल, हाथ से कुटे चावल, ताड़ गुड़, शहद, खिलौने, चटाइयां, हाथ से बना कागज, साबुन आदि। इस प्रकार यदि पर्याप्त ध्यान दिया जाए तो ऐसे गाँवों में जो निष्प्राण हो चुके हैं या निष्प्राण होने की प्रक्रिया में हैं, नवजीवन का संचार हो सकेगा, तथा उनकी स्वयं अपने और भारत के शहरों और कस्बों के इस्तेमाल के लिए आवश्यकता की अधिकांश वस्तुओं के निर्माण की अनंत संभावनाओं का पता चल सकेगा।''[7]

गाँवों के शिल्पों का विकास

गाँव के शिल्पों के विकास के लिए वे सदा मननशील रहते थे– ''ग्रामवासियों को अपने कौशल में इतनी वृद्धि कर लेनी चाहिए कि उनके द्वारा तैयार की गई चीजें बाहर जाते ही हाथों–हाथ बिक जाएँ। जब हमारे गाँवों का पूर्ण विकास हो जाएगा तो वहाँ ऊँचे दर्जे के कलात्मक प्रतिभा वाले लोगों की कमी नही रहेगी। तब गाँवों के अपने कवि भी होंगे, कलाकार होंगे, वास्तुशिल्पी होंगे, भाषाविद् होंगे और अनुसंधानकर्त्ता भी होंगे। संक्षेप में, जीवन में जो कुछ भी प्राप्य है, वह सब गाँवों में उपलब्ध होगा।''

''आज हमारे गाँव गोबर के ढेर मात्र हैं। कल वे सुंदर–सुंदर वाटिकाओं का रूप ले लेंगे जिनमें इतनी प्रखर बुद्धि के लोग निवास करेंगे जिन्हें न कोई धोखा दे सकेगा और न उनका शोषण कर सकेगा। ऊपर बताई गई पद्धति के अनुसार गाँव के पुनर्निर्माण का कार्य तत्काल शुरू कर देना चाहिए..... गाँवों का पुनर्निर्माण अस्थायी नही, स्थायी आधार पर किया जाना चाहिए।''[8]

गाँवों को उचित–स्थान मिले

गाँधी जी ने कहा– ''हमें दो में से एक चीज चुननी होगी–गाँवों का भारत जो उतने ही प्राचीन हैं जितना कि स्वयं भारत है, या शहरों का भारत जो विदेशी आधिपत्य की देन हैं। आज प्रभुत्व शहरों का है, जो गाँवों को इस तरह चूस रहे हैं कि वे खंडहर हुए जा रहे हैं। मेरी खादी की मानसिकता मुझे बताती है कि जब शहरों का प्रभुत्व समाप्त हो जाएगा तो वे गाँवों के सहायक की भूमिका में आ जाएंगे। गाँवों का शोषण अपने आप में एक संगठित हिंसा है। यदि हम चाहते हैं कि स्वराज अहिंसा पर आधारित हो तो हमें गाँवों को उनका उचित स्थान देना होगा।''[9]

गाँव वालों को पोषक–आहार मिले

उन्हें चिन्ता थी ''इस बात का पता लगाना आवश्यक है कि वे सादे से सादे और सस्ते खाद्य पदार्थ कौन–से हैं जिनसे ग्रामवासी अपने खोए हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। उनके आहार में हरे पत्ते शामिल करने से वे उन अनेक बीमारियों का शिकार होने से बच सकेंगे, जिनसे वे इस समय ग्रस्त हैं।''

ग्रामवासियों के आहार में विटामिनों की कमी है; ''इनमें से बहुत से विटामिन ताजे हरे पत्तों से मिल सकते हैं। एक प्रसिद्ध डाक्टर ने मुझे बताया है कि हरे पत्तों के सही इस्तेमाल से आहार विषयक प्रचलित विचारों में क्रांति

आ सकती है और जो पोषण इस समय दूध से मिल रहा है, वह हरे पत्तों से प्राप्त किया जा सकता है।''[10]

पंचायत राज का स्वरूप

पंचायत–राज के स्वरूप पर गाँधीजी ने श्रेष्ठ समाज रचना की दृष्टि से भी विचार किया–''भारत को ग्राम गणतन्त्रों का अनुभव है। मेरी कल्पना है कि ये अनजाने ही अहिंसा द्वारा शासित थे, अब एक जानी–बूझी अहिंसक योजना के तहत इनके पुनरूज्जीवन का प्रयास करना होगा।''[11]

''सबसे उत्तम, त्वरित और कुशल उपाय नीचे से निर्माण करने का है..... प्रत्येक गाँव को एक स्वावलम्बी गणतंत्र बनाना होगा। इसके लिए लंबे–चौड़े प्रस्ताव पास करने की जरूरत नहीं है। इसके लिए साहसिक, सामूहिक और विवेकपूर्ण कार्य की जरूरत है।''[12]

''स्वाधीनता नीचे से शुरू होनी चाहिए। तद्नुसार प्रत्येक गाँव एक गणतंत्र या पंचायत होगी जिसे समस्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक गाँव को आत्मनिर्भर होना पड़ेगा और अपने मामलो की देखरेख स्वयं करनी होगी; यहाँ तक कि उसे दुनिया से अपनी रक्षा करने की सामर्थ्य भी विकसित करनी होगी। गाँव को बाहरी आक्रमण से अपनी रक्षा करने और आवश्यक हो तो उस प्रयास में नष्ट हो जाने के लिए प्रशिक्षित और उद्यत किया जाएगा। इस प्रकार अंततः व्यक्ति ही इकाई माना जाएगा।

''इसका मतलब यह नहीं है कि वह पड़ोसियों पर या बाहरी दुनिया पर कतई निर्भर नहीं होगा या उनके द्वारा स्वेच्छा से की गई सहायता को भी स्वीकार नहीं करेगा। लेकिन यह पारस्परिक व्यवहार उभय पक्षों की स्वतंत्रता और स्वेच्छा से संचालित होगा। ऐसा समाज अनिवार्यतः अत्यंत सुसंस्कृत होगा, जिसमें प्रत्येक स्त्री–पुरूष को यह ज्ञान होगा कि उसे क्या चाहिए और इससे भी बड़ी बात यह है कि उसे यह मालूम होगा कि उसे ऐसी किसी चीज की इच्छा नहीं करनी चाहिए जिसे दूसरे लोग भी उतना ही श्रम करके प्राप्त न कर सकते हों।''

यह समाज स्वभावतया सत्य और अहिंसा पर आधारित होना चाहिए जो, मेरी राय में तब तक संभव नहीं है, जब तक मनुष्य को ईश्वर में जाग्रत आस्था न हो– ''ईश्वर जो स्वयंभू और सर्वज्ञ है, जो विश्व के ज्ञात सभी बलों में अंतर्निहित है, जो किसी पर आश्रित नहीं है, और जो सभी बलों के नष्ट अथवा निष्क्रिय हो जाने पर भी विद्यमान रहेगा। इस सर्वसमावेशी जाग्रत आलोक में आस्था रखे बिना मैं तो अपने जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता।''[13]

सागरीय वृत्तों जैसी अधिरचना

इस अधिरचना को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा– ''असंख्य गाँवों से बने इस ढाँचे में एक के बाद एक विस्तारशील किन्तु कभी ऊर्ध्वगामी न होने वाले वलय होंगे। जीवन एक पिरामिड की तरह नहीं होगा जिसमें आधार को शीर्ष का भार वहन करना पड़ता है बल्कि वह एक समुद्री वलय की तरह होगा जिसके केंद्र में व्यक्ति होगा जो सदैव अपने गाँव के लिए मर–मिटने के वास्ते तैयार रहेगा, गाँव–गाँव समूहों के वास्ते नष्ट हो जाने के लिए तैयार रहेगा, और यह प्रक्रिया वहाँ तक चलती रहेगी जहाँ सम्पूर्ण विश्व एक जीवन का रूप धारण कर लेगा; सभी व्यक्ति इस एक जीवन के अंग होंगे, वे कभी आक्रामक रूख नहीं अपनाएंगे बल्कि व्यक्ति सदा विनम्रता का व्यवहार करेंगे और उस समुद्री वलय के ऐश्वर्य में भागीदार होंगे जिसकी वे अंगभूत इकाइयाँ हैं।''

''इस समुद्री वलय की बाह्यतम परिधि के पास आंतरिक परिधि को कुचलने की शक्ति नहीं होगी, बल्कि वह अपने अंदर की सभी परिधियों को शक्ति प्रदान करेगी और स्वयं उनसे शक्ति प्राप्त करेगी। लोग मुझे पलटकर उलाहना दे सकते हैं कि ये सब यूटोपिआई बाते हैं और जरा भी विचारणीय नहीं हैं। यदि यूक्लिड के बिन्दु का, भले ही कोई भी मनुष्य उसे कागज पर न उतार सके, अक्षय, मूल्य है तो मेरी उपर्युक्त तस्वीर का भी मानव–जाति के लिए मूल्य है।''[14]

ग्राम स्वराज्य : आदर्श गणतंत्र

गाँधीजी ने कहा–''भारत को इस सच्ची तस्वीर के लिए जीना चाहिए, भले ही हम उसे कभी पूरी तरह प्राप्त न कर सकें। हम जो चाहते हैं, हमारे सामने पहले उसकी सही तस्वीर होनी चाहिए, तभी हम उसे प्राप्त करने की दिशा में प्रयास कर सकते हैं। अगर भारत का प्रत्येक गाँव कभी गणतंत्र बना तो मेरा दावा है कि मेरी तस्वीर ही सच्ची साबित होगी जिसमें निम्नतम व्यक्ति उच्चतम के समकक्ष होगा अर्थात् न कोई उच्चतम होगा न कोई निम्नतम।''

''इस तस्वीर में ऐसी मशीनों के लिए कोई स्थान प्राप्त है। हम सभी एक शानदार वृक्ष की पत्तियाँ हैं जिसकी जड़ें पृथ्वी के गर्भ में इस तरह जमी हुई हैं कि उसके तने को उसकी जड़ों से अलग नहीं किया जा सकता। तेज से तेज झंझावत भी इस वृक्ष को हिला नहीं सकता।''

''इस तस्वीर में ऐसी मशीनों के लिए कोई स्थान नहीं है जो मानव श्रम को विस्थापित करती है और मुट्ठी भर लोगों में शक्ति का केन्द्रीकरण करती है। सुसंस्कृत मानव परिवार में श्रम का स्थान बेजोड़ है। ऐसी हर मशीन का स्वागत है जो प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करती है। हाँ, मैं यह बात मानने के लिए तैयार हूँ कि मैं अभी तक इस प्रश्न पर विचार नहीं कर पाया हूँ कि ऐसी मशीन कौन सी हो सकती है। सिंगर की सिलाई मशीन मेरे ध्यान में आई है। लेकिन यह भी सरसरी तौर पर ही है। अपनी तस्वीर को भरने के लिए मुझे इसकी जरूरत नहीं है।''[15]

ग्राम गणतंत्रों के अन्तर्गत व्यवस्थाएँ

अपने अभीसिप्त ग्राम–गणतंत्र के बारे में बोलते हुए गाँधीजी ने कहा–''मैं ऐसे भारत की कल्पना नहीं कर रहा हूँ, जो निर्धनता का शिकार होगा और जिसमें करोड़ों अज्ञानी लोगों का वास होगा। मेरी कल्पना का भारत अपनी प्रकृति के अनुरूप निरंतर प्रगति करने वाला देश होगा। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि भारत पश्चिम की मरणासन्न सभ्यता की घटिया या–बढ़िया–से–बढ़िया अनुकृति बने।''

''अगर मेरा सपना सच होता है और देश के सात लाख गाँवों में से प्रत्येक गाँव एक स्वस्थ गणतंत्र बनता है, जिसमें कोई व्यक्ति निरक्षर नहीं होगा, कोई बेरोजगार नहीं होगा, हरेक के पास भरपूर काम होगा और पौष्टिक भोजन होगा, हवादार मकान होंगे, तन ढकने के लिए पर्याप्त खादी होगी, सभी ग्रामवासियों को स्वास्थ्य–रक्षा तथा स्वच्छता के नियमों का ज्ञान होगा और वे उनका पालन करते होंगे, तो

ऐसी स्थिति में राज्य की आवश्यकताएँ विविध और बर्धमान होंगी जिनकी पूर्ति उसे करनी होगी अन्यथा उसकी प्रगति अवरूद्ध हो जाएगी।''[16]

स्वावलम्बी गणतंत्र : ग्राम स्वराज

गाँधीजी ने कहा–''ग्राम स्वराज की मेरी धारणा के अनुसार वह एक पूर्ण गणतंत्र होगा जो अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के मामले में अपने पड़ोसियों पर निर्भर नहीं होगा। फिर भी, जिन मामलों में निर्भरता आवश्यक है, उनमें गाँवों के बीच परस्पर निर्भरता की स्थिति होगी। तद्नुसार, प्रत्येक गाँव का पहला काम अपने खाने के लायक अन्न और कपड़े के लिए कपास उगाना होगा। वह अपने पशुओं के लिए चारागाह और वयस्कों तथा बच्चों के लिए मनोरंजन और खेल के मैदान की व्यवस्था भी करेगा। इसके बाद अगर और जमीन उपलब्ध होगी तो उस पर गाँजा, तंबाकू, अफीम को छोड़कर अन्य नकदी फसलें उगाई जाएंगी।''

गाँव में एक मंच, स्कूल और सार्वजनिक सभागार होगा। उसका अपना जल संस्थान होगा जो स्वच्छ जल की आपूर्ति सुनिश्चत करेगा। इसकी व्यवस्था नियंत्रित कुंओं या तालाबों से की जा सकती है। बुनियादी पाठ्यक्रम के अंतिम वर्ष तक की शिक्षा अनिवार्य होगी। जहाँ तक संभव होगा, प्रत्येक कार्यकलाप सहकारिता के आधार पर चलाया जायेगा। आज जैसी जातियां जिनमें न्यूनाधिक छूआछूत प्रचलित है, समाप्त हो जाएंगी।

''सत्याग्रह और असहयोग की तकनीक से युक्त अहिंसा ग्राम समुदाय की दंड–शक्ति होगी। ग्राम–रक्षकों के रूप में सबको अनिवार्य सेवा करनी होगी; रक्षकों का चुनाव गाँव द्वारा रखे जाने वाले रजिस्टर में से बारी–बारी से किया जायेगा।''[17]

गाँव का शासन

गाँव के शासन का स्वरूप करते हुए गाँधीजी ने कहा–''गाँव का शासन पांच व्यक्तियों की पंचायत चलाएगी जो न्यूनतम निर्धारित योग्यता रखने वाले वयस्क स्त्री–पुरूषों द्वारा प्रतिवर्ष चुनी जाएगी। इन पंचों के पास समस्त प्राधिकार और आपेक्षित क्षेत्राधिकार होंगे। चूँकि दण्ड का समान्यतया जो अर्थ लगाया जाता है उस अर्थ में कोई दण्ड–प्रणाली लागू नहीं होगी, इसलिए यह पंचायत ही अपने कार्यकाल के दौरान विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका, तीनों को स्वयं में समाविष्ट करते हुए उनके कर्तव्यों का निर्वाह करेगी।''

मैंने यहाँ इस बात पर विचार नहीं किया है कि पंचायत के अपने पड़ोसी गाँवों और केन्द्र के साथ, यदि हुआ तो, क्या संबंध होंगे। मेरा उद्देश्य ग्राम शासन की रूपरेखा प्रस्तुत करना है। गाँव में पूर्ण लोकतंत्र चलेगा जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधारित होगा। व्यक्ति ही अपनी सरकार का निर्माता होगा। उस पर और उसकी सरकार पर अहिंसा के नियम का शासन होगा। वह और उसका गाँव सारी दुनिया की ताकत को चुनौती दे सकेंगे। कारण कि, प्रत्येक ग्रामवासी इस नियम से शासित होगा कि वह अपने और अपने गाँव के सम्मान की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार रहेगा.....

ऊपर जो तस्वीर पेश की गई है, उसमें कोई बात ऐसी नहीं है, जिसे असंभव कहा जा सके। ऐसे आदर्श गाँव की स्थापना करने में व्यक्ति का पूरा जीवन काल लग सकता है। सच्चे लोकतंत्र और ग्राम–जीवन का कोई प्रेमी यदि एक गाँव चुन ले और उसे अपनी दुनियाँ तथा एकमात्र कार्य मानकर जुट जाए तो उसे निश्चय ही काफी अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे।[18]

लोकमत से चलेगा अहिंसक समाज

गाँधीजी ने कहा–''पंचायत राज की स्थापना हो जाने पर लोकमत वह काम कर सकता है जो हिंसा कभी नहीं कर सकती। जमींदारों, पूँजीपतियों और राजाओं की वर्तमान शक्ति का बोलबाला तभी तक रह सकता है। जब तक आम लोगों को अपनी शक्ति का अहसास नहीं होता। अगर लोग जमींदारी या पूँजीवाद की बुराईयों के साथ असहयोग करने लगें तो वह अर्थहीन होकर नष्ट हो जायेगा। पंचायत राज में केवल पंचायत का ही आदेश चलेगा और पंचायत अपने ही बनाए कानूनों के मुताबिक काम करेगी।''[19] इस तरह लोकमत से चलेगा अहिंसक समाज।

इस प्रकार समाज के बारे में गाँधीजी ने पूरे विस्तार और बारीकी से चिन्तन किया है क्योंकि उनका मानना था कि ''स्वराज्य सभी का होगा शिक्षितों और धनवानों का भी, पर इसमें खासतौर से अपंग, नेत्रहीन, भूखे और मेहनतकश करोड़ों भारतवासी शामिल होंगे।[20]

समाज में अतिसय उपयोग की सुविधा तो सब को मिल पानी असम्भव है। परन्तु न्यूनतम उपयोग की सुविधा सबको अवश्य मिले, यह चिन्ता, उन्हें सदा रही। उन्होंने कहा–''मेरे सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य है। जीवन की अनिवार्य वस्तुएँ तुम्हें भी उसी प्रकार उपलब्ध होनी चाहिए, जिस प्रकार राजाओं और धनवानों को उपलब्ध है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे पास उन जैसे ही महक भी होंगे। सुखी जीवन के लिए ये आवश्यक नहीं है। तुम या मैं तो उनमें खो जाएंगे। लेकिन तुम्हें जीवन की वे सभी सामान्य सुख–सुविधाएं मिलनी चाहिए जो कि एक धनी व्यक्ति को उपलब्ध है। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि जब तक तुम्हें उन सुख–सुविधाओं की गारण्टी नहीं मिलती तब तक स्वराज्य पूर्ण स्वराज्य नहीं माना जा सकता।[21]

गाँधीजी अपने समाज चिन्तन में प्रत्येक व्यक्ति को न्याय दिलाने के प्रति सदा सजग रहे क्योंकि उनका कहना था कि– ''मेरे दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण चीज व्यक्ति के प्रति न्याय है, भले ही वह व्यक्ति कितना ही अदना क्यों न हो। बाकी सारी बातें इसके बाद आती हैं।''[22]

''गाँधीजी की परिकल्पना के समाज में उचित श्रम–विभाजन आवश्यक था। इसके साथ भी वे आचरण की परिमाणिकता पर बहुत बल देते थे।''[23]

''व्यक्ति परिवार और समाज के प्रत्येक कर्म के भूमिका के बारे में गाँधीजी के स्पष्ट चिन्तन से उनके समाज दर्शन का स्वरूप प्रकट होता है। इस समाज में सबके लिए शांति, संतोष और सुख की व्यवस्था हो इसके बारे में गाँधीजी ने गहराई से चिन्तन किया। परन्तु सुख की इनकी धारणा में मनमाने पथ की कोई जगह नही थी।''

उनका कहना है कि– ''सुख से तात्पर्य है मानव गरिमा की प्रबुद्ध सिद्धि और मानव स्वातंत्रय के लिए ललक जो व्यक्तिगत सुविधाओं और भौतिक आवश्यकताओं की

केवल स्वार्थमय तुष्टि से अधिक महत्व स्वयं को देती है और उसकी रक्षा के निमित्त इनका सहर्ष त्याग करने के लिए उद्यत रहती है।[24]

''सुख स्वयं प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पूर्णता तथा सत्य की खोज में निवास करता है।.... ''क्या सभी लोग पूर्णता की प्राप्ति कर सकते हैं ?'' अवश्य, वह तो उनके अंदर ही है। [25]

गाँधीजी का यह भी मानना था कि–''इस दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम उत्पादन करके रहन–सहन के उच्चतम स्तर तक पहुँच सकता है, उतना ही काल्पनिक है जितना कि सुई की नोक से ऊँट के गुजर सकने की आशा करना.....विलासमय जीवन जीना..... समूचे समाज के लिए कभी संभव नहीं हो पाएगा। इसके अलावा जब विलास की कोई सीमा ही नहीं है तो हम रूकेंगे कहाँ जाकर ?[26]

गाँधीजी ने बताया कि देश में बड़े–बड़े कारखानों, बाँधों एवं अन्य विकास योजनाओं के लिए करों में भारी वृद्धि, निजी उद्योगों पर बलात् अधिकार एवं विदेशी ऋण लेकर धन जुटाया जा रहा है। विदेशी उद्योगपतियों तथा विदेशी विशेषज्ञों को कारखाना खोलने की अनुमति प्रदान करके औद्योगिक प्रगति का दिखावा किया जा रहा है। विकास के नाम पर चलने वाली योजनाओं पर धन का बड़ी मात्रा में अपव्यय हो रहा है। पुरानी मशीनों को बड़े–बड़े मूल्यों पर खरीदा जा रहा है। कार्य में लापरवाही बरती जा रही है। इतना ही नहीं; योजना करने वाले विशेषकर बड़े–बड़े अधिकारियों द्वारा धन का अपहरण किया जा रहा है।''

स्वदेशी और महात्मा गाँधी

स्वदेशी की सबसे स्पष्ट परिभाषा एवं व्याख्या हमें महात्मा गाँधी के ही चिंतन तथा जीवन में प्राप्त होती है। स्वदेशी का अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा– ''स्वदेशी वह भावना है जो हमें दूर–दराज के इलाकों को छोड़कर अपने समीपस्थ क्षेत्रों का उपयोग करने और उनकी सेवा करने तक सीमित करती है। इस प्रकार, धर्म के मामले में इस परिभाषा के अनुसार, मुझे स्वयं को अपने पूर्वजों के धर्म तक सीमित रखना चाहिए। यह मेरे समीपस्थ धार्मिक वातावरण का उपयोग कहलाएगा। यदि मुझे इसमें कोई दोष दिखाई देता है तो मुझे उपयुक्त सेवा के द्वारा इसके इस दोष को दूर करना चाहिए।

राजनीति के क्षेत्र में मुझे देशी संस्थाओं का उपयोग चाहिए और उनके प्रकट दोषों को दूर करने के लिए चीजों का इस्तेमाल करना चाहिए। जहाँ तक आर्थिक क्षेत्र का संबंध है, मुझे उन चीजों का इस्तेमाल करना चाहिए जिनका उत्पादन मेरे समीपस्थ पड़ोसी करते हैं और यदि मुझे वहां के उद्योगों में कोई कमी दिखाई देती है तो मुझे उन्हें अधिक कार्य–कुशल और पूर्ण बनाने के लिए उनकी सेवा करनी चाहिए। स्वदेशी की इस भावना पर यदि आचरण किया जाए तो यह हजार वर्ष तक चलती जाएगी .

हिन्दुत्व के मूल में है स्वदेशी–भावना

गाँधी जी ने सदा यह स्पष्ट किया कि भारत में स्वदेशी की मुख्य आधार–भूमि हिन्दू धर्म ही है। उन्होंने कहा– ''हिन्दू धर्म एक परम्परागत धर्म बन गया है और चूँकि उसके मूल में स्वदेशी की भावना है, इसलिए यह अत्यधिक शक्ति संम्पन्न हो गया है। यह सबसे अधिक सहिष्णु धर्म है, क्योंकि इसमें अन्य लोगों का धर्म–परिवर्तन कराके उन्हें हिन्दू बनाने का कोई विधान नहीं है और यह जितना विस्तारशील पहले था उतना आज भी है। इसने बौद्ध–धर्म को देश से बहिष्कृत कर दिया था। स्वदेशी की भावना के कारण ही हिन्दू अपना धर्म बदलने से इंकार करता है; इसका अनिवार्यतः यह कारण नहीं है कि वह अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है, बल्कि यह है कि वह इस बात को जानता है कि वह इसमें अपेक्षित सुधार लाकर इसकी कमियों को दूर कर सकता है। मैंने अभी जो बात हिन्दू धर्म के बारे में कही है। मैं समझता हूँ कि, वह विश्व के सभी बड़े धर्मों के बारे में कही जा सकती है; यह अवश्य है कि हिन्दू धर्म के बारे में विशेष रूप से लागू होती है।[27]

गाँधी जी ने स्वदेशी को शिक्षा के संदर्भ में व्याख्यातित करते हुए कहा– ''शिक्षा के मामले में स्वदेशी की भावना के घातक त्याग से हमें बहुत अधिक हानि पहुँचती है। हमारे शिक्षित वर्ग की शिक्षा विदेशी भाषा के माध्यम से हुई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हम आम जनता के साथ तादात्म्य नहीं कर पाए। हम आम जनता का प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं, लेकिन उसमें सफल नहीं हो पाते। आप लोग हमें उसी अपरिचित दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से वे अंग्रेज अधिकारियों को देखते हैं। उनके दिलों की बात को न हम समझ पाते हैं और न अंग्रेज अधिकारी। आम आदमी की आकांक्षाएं हमारी आकाक्षाएं नहीं है, इसलिए उनके और हमारे बीच में एक खाई पैदा हो गई है। इसीलिए आप जो देख रहे वह वस्तुतः हमारे संगठन की असफलता नहीं है, बल्कि प्रतिनिधियों और जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं उनके बीच तादात्म्य का अभाव है।

यदि पिछले 50 वर्षों के दौरान हमारी शिक्षा अपने देश की भाषाओं द्वारा हुई होती तो हमारे बुजुर्ग और हमारे नौकर–चाकर तथा पड़ोसी हमारे ज्ञान में भागीदार होते; बोस या राय की खोजों का उसी प्रकार घर–घर प्रचार होता जैसा कि रामायण और महाभारत का है। आज स्थिति यह है कि जहाँ तक हमारे आम आदमी का ताल्लुक है, उसके लिए इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि ये खोंजे भारतीयों ने की है या विदेशियों ने। यदि शिक्षा की सभी शाखाओं में पढ़ाई देशी भाषाओं के माध्यम से हो रही होती तो मैं इस बात को दावे के साथ कह सकता हूँ कि उनकी अद्भुत समृद्धि हुई होती ....[28]

आर्थिक जीवन और स्वदेशी

गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि ''आम आदमी की घोर निर्धनता का सबसे बड़ा कारण आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में स्वदेशी का त्याग है। यदि एक भी चीज भारत के बाहर से न खरीदी जाती तो इस देश में घी–दूध की नदियां बह रही होती। लेकिन ऐसा नहीं होना था। हम लालची हैं और हम जैसा लालची ही इंग्लैण्ड भी था। इंग्लैण्ड और भारत के बीच का संबंध स्पष्टतया एक गणित के ऊपर आधारित था ...

यदि हम स्वदेशी के सिद्धान्त का पालन करें तो आपका और मेरा यह कर्तव्य हो जाएगा। कि ऐसे पड़ोसियों को ढूंढ़े जो हमारी आवश्यकता की वस्तुएँ हमें दे सकें और यदि वे किसी वस्तु का उत्पादन करने में असमर्थ हों तो हम उन्हें अपेक्षित प्रशिक्षण दें। यहाँ हम यह मानकर चलते हैं कि हमारे पड़ोस में ऐसे लोग है जो स्वस्थ काम–धंधे की

तलाश में हैं। यदि ऐसा होगा तो भारत का प्रत्येक गाँव लगभग स्वावलम्बी और स्वतः पूर्ण हो जाएगा और वह दूसरे गाँवों के साथ उन्हीं आवश्यक वस्तुओं की अदला–बदली करेगा जिनका स्थानीय उत्पादन संभव नहीं हैं।

ये बातें मूर्खतापूर्ण प्रतीत हो सकती है। मेरा जवाब है कि यह देश ही मूर्खों का है। यदि हमारा कंठ प्यास से सूखा जा रहा है और कोई दयालु मुसलमान हमें शुद्ध जल पिलाने के लिए तैयार है तो भी अगर हम उसे पीने से इंकार करते हैं तो यह भी मूर्खता ही है। फिर भी, लाखों हिन्दू किसी मुसलमान के घर से लेकर पानी पीने की अपेक्षा प्यास से मर जाना बेहतर समझेंगे। इन मूर्ख लोगों के मन में यदि यह बात बैठा दी जाय कि उनके धर्म की माँग यह है कि वे केवल भारत में बनाए गए कपड़ों को ही पहनें और भारत में पैदा होने वाली वस्तुओं को ही खाएं तो ये लोग देशी के अलावा अन्य किसी कपड़े को पहनने और अन्य किसी खाद्य वस्तु को खाने से इंकार कर देंगे .....[29]

स्वदेशी का आदर्श

स्वदेशी के आदर्श को स्पष्ट करते हुए इन्होंने कहा– ''प्रायः कहा जाता है कि भारत अपने आर्थिक जीवन में तो स्वदेशी को अपना ही नहीं सकता। जो लोग यह आपत्ति उठाते हैं वे स्वदेशी को जीवन के नियम के रूप में स्वीकार नहीं करते। उनकी दृष्टि में यह केवल राष्ट्र–भावना से प्रेरित एक प्रयास है जिसमें यदि कष्ट हो तो उसे छोड़ा भी जा सकता है। स्वदेशी की जो परिभाषा मैंने ऊपर दी है उसके अनुसार यह एक धार्मिक अनुशासन है जिसका हमें भौतिक कष्ट की तनिक भी चिन्ता न करते हुए पालन करना है। स्वदेशी की भावना के प्रभाव में यदि हम पिन या सुई से स्वयं को इसलिए वंचित कर देंगे कि इसका निर्माण भारत में नहीं होता है तो हमें इसका कष्ट बिल्कुल नहीं सताएगा। स्वदेशी का पालन करने वाले व्यक्ति को ऐसी सैकड़ों चीजें छोड़ने के लिए तैयार होना होगा जिन्हें वह आज आवश्यक मानता है .....

मेरा कहना ये है कि स्वदेशी ही वह एकमात्र सिद्धान्त है जो विनम्रता और प्रेम के नियम के अनुरूप है। यदि मैं अपने परिवार की ही ठीक से सेवा न कर पाऊँ तो मेरे लिए समूचे भारत की सेवा के वास्ते निकल पड़ना दंभ की बात होगी। तब मेरे लिए यही बेहतर होगा कि मैं अपने प्रयासों को अपने परिवार तक सीमित रखूं और यह समझूं कि मैं ऐसा करके संपूर्ण राष्ट्र बल्कि कहिए कि सम्पूर्ण मानवता की सेवा कर रहा हूँ। यही विनम्रता है और यही प्रेम है।

हमारे कार्य की उत्कृष्टता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके पीछे हमारा प्रयोजन क्या है। हो सकता है कि मैं अपने परिवार की सेवा करते समय इस बात की चिन्ता ही न करूँ कि इससे मैं दूसरे लोगों को कितना कष्ट दे रहा हूँ। उदाहरण के रूप में, मैं कोई ऐसा कदम उठा लूं जिसमें मुझे लोगों से रूपए ऐंठना पड़ता है। इससे मुझे पैसा जरूर मिलेगा और मैं अपने परिवार की बहुत सी नाजायज माँगों को पूरा कर सकूँगा, लेकिन ऐसा करते हुए मैं न अपने परिवार की सेवा कर रहा हूँ और न अपने राज्य की।

यह भी संभव है कि मैं इस बात को समझूं कि भगवान ने मुझे हाथ पैर इसीलिए दिए हैं कि मैं अपने और अपने आश्रितों के जीवन–निर्वाह के लिए काम करने के वास्ते उनका इस्तेमाल करूं। ऐसा समझने पर मेरे और मेरे निकट के लोगों के जीवन में तत्काल सादगी आ जाएगी। तब मैं किसी अन्य व्यक्ति को क्षति पहुँचाए बिना अपने परिवार की सेवा करूँगा। यदि हर व्यक्ति इस जीवन–पद्धति को अपना ले तो हमारा राज्य एक आदर्श राज्य हो जाए। मैं मानता हूँ कि सभी लोग एक साथ इस अवस्था की प्राप्ति नहीं कर सकते, लेकिन इस सिद्धान्त की सत्यता को स्वीकार करते हुए हममें से जो भी लोग इस पर आचरण करेंगे निश्चय ही उस आदर्श स्थिति की प्राप्ति को निकटतर ले आएंगे।[30]

स्वदेशी का परिवेश

महात्मा गाँधी ने परिवेश के सन्दर्भ में स्वदेशी की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया कि– ''स्वदेशी की मेरी परिभाषा सुविदित है। मैं अपने निकटस्थ पड़ोसी की कीमत पर किसी दूरस्थ पड़ोसी की सेवा नहीं करूँगा। इसमें बदला लेने या दण्ड देने की भावना कदापि नहीं है। यह किसी भी अर्थ में संकुचित भावना का परिचायक नहीं है, क्योंकि मुझे अपनी संमृद्धि के लिए जो कुछ चाहिए वह मैं विश्व के हर एक भाग से खरीदूँगा लेकिन मैं बहुत बढ़िया और सुन्दर होते हुए भी कोई ऐसी चीज किसी से नहीं खरीदूँगा जो मेरी समृद्धि में बाधक हो या उन लोगों को क्षति पहुँचाने वाली हो जिन्हें प्रकृति ने मेरी देखरेख में दिया हुआ है।

मैं दुनिया के हर कोने से अच्छा साहित्य खरीदूँगा। मैं इंग्लैण्ड से शल्य चिकित्सा के औजार, आस्ट्रेलिया से पिनें और पेंसिलें और स्विट्जरलैण्ड से घड़ियाँ खरीदूँगा। लेकिन मैं इंग्लैण्ड या जापान या दुनिया के किसी देश से एक इंच भी बढ़िया सूती कपड़ा नहीं खरीदूंगा, क्योंकि इससे भारत के करोड़ों भारतवासियों के हितों को क्षति पहुँचती है और अधिकाधिक पहुँच रही है।

मैं भारत के जरूरतमंद करोड़ों निर्धनों द्वारा काते और बुने गए कपड़े को खरीदने से इंकार करना और विदेशी कपड़े को खरीदना पाप समझता हूँ, भले ही वह भारत के हाथ से कते कपड़े की तुलना में कितने ही बढ़िया किस्म का हो। इस प्रकार मेरे स्वदेशी का केन्द्र बिन्दु हाथ की कती खादी है और स्वदेशी की इस भावना में वे सभी वस्तुएं समाहित है जिनका भारत में उत्पाद होता है या किया जा सकता है।[31]

स्वदेशी का पुजारी अपने निकटस्थ पड़ोसी की सेवा के लिए स्वयं को समर्पित करना अपना पहला कर्तव्य समझेगा। इसमें अन्य लोगों के हितों की ओर ध्यान न देना अथवा उनका त्याग भी शामिल है, लेकिन यह अन्यथा या त्याग केवल ऊपरी ही है, वास्तविक नहीं। अपने पड़ोसियों की शुद्ध भाव से की गई सेवा प्रक्रिया उन लोगों को क्षति नहीं पहुँचा सकती जो दूरस्थ है; सच पूछा जाए तो वह उनकी भी सेवा ही करेगी।

हमें अपने हृदय में यह अचूक सिद्धान्त पक्के तौर पर बैठा लेना चाहिए कि ''जो बात व्यक्ति पर लागू है। वही सम्पूर्ण विश्व पर भी लागू होती है।'' दूसरे शब्दों में जो व्यक्ति ''दूरस्थ दृश्य'' के आकर्षणों में फंसकर दुनिया के दूसरे कोने तक सेवा करने के लिए भागता है, वह न केवल अपनी आकांक्षा की पूर्ति में असफल होता है बल्कि, अपने पड़ोसियों के प्रति अपने कर्तव्य से भी विमुख होता है.....[32]

मेरा इस सत्य में अडिग विश्वास है कि व्यक्ति एक ही साथ अपने पड़ोसियों और मानवता की सेवा कर सकता है; शर्त यही है कि पड़ोसियों की सेवा के पीछे स्वार्थ या अन्यता का भाव न हो, अर्थात् उसमें अन्य व्यक्तियों का शोषण निहित न हो। तब पड़ोसी भी उस भावना को समझ सकेंगे। जिस भावना से आप उनकी सेवा करना चाहते हैं वे यह भी जान जाएंगे कि बदले में उन्हें भी गुणोत्तर वृद्धि होती जाएगी और यह समूची दुनिया को समाविष्ट कर लेगें। इसका तात्पर्य यह हुआ कि स्वदेशी वह भावना है जो आपको अन्य लोगों की चिन्ता किए बिना अपने निकटस्थ पड़ोसी की सेवा के लिए प्रेरित करती है। शर्त यह है कि, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, आपका पड़ोसी भी, बदले में, अपने पड़ोसी की सेवा करे। इस अर्थ में, स्वदेशी में अन्यता का कोई भाव नहीं है। इसमें केवल इस वैज्ञानिक मर्यादा को स्वीकार किया गया है कि मनुष्य की सेवा करने की सामर्थ्य की भी एक सीमा है।[33]

स्वदेशी व्रतधारी समाज का विदेश के प्रति क्या व्यवहार हो, यह स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं। ''जीवन की इस योजना के तहत दूसरे सभी देशों को छोड़कर केवल भारत की सेवा कर, मैं किसी अन्य देश को कोई क्षति नहीं पहुँचाता। मेरा राष्ट्रप्रेम व्यावर्तक भी है और समावेशी भी। व्यावर्तक इस अर्थ में है कि मैं पूरी विनम्रता के साथ अपना ध्यान अपनी जन्मभूमि तक सीमित रखता हूँ और समावेशी इस अर्थ में है कि मेरी सेवा का स्वरूप स्पर्धात्मक या विरोधात्मक बिल्कुल नहीं है। अपनी संपत्ति का इस्तेमाल इस तरह करो कि वह किसी दूसरे को क्षति न पहुँचाए, केवल कानून की ही सूक्ति नहीं है, अपितु जीवन का एक महान सिद्धान्त है। यह अहिंसा या प्रेम पर ठीक से अमल करने की कुंजी है।[34]

मेरा यह विचार कभी नहीं रहा है कि स्वदेशी का यह अर्थ लिया जाए कि विदेश में बनी हर चीज को हर हालत में त्याज्य समझना है। स्वदेशी की मोटी परिभाषा यह है कि हमें देशी उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के लिए विदेशी वस्तुओं का त्याग करके देशी वस्तुओं का इस्तेमाल करना चाहिए; यह बात उन उद्योगों पर खासतौर से लागू होते है जिनके नष्ट होने पर भारत कंगाल हो जाएगा। इसलिए, मेरी राय में, स्वदेशी का यह अर्थ लगाना उसकी व्याख्या को संकुचित करना होगा कि हमें प्रत्येक विदेशी वस्तु को त्याग कर देना चाहिए भले ही वह कितनी ही फायदेमन्द हो और उसके कारण देश में किसी के कामधंधे को हानि न पहुँचती हो।[35]

स्वदेशी का मर्म समझें

उन्होंने यह भी समझाया कि ''यदि हम स्वदेशी की जड़पूजा करने लगे तो किसी भी अन्य अच्छी चीज की तरह यह भी मौत का परवाना बन जायेगी। हमें इस खतरे से सावधान रहना होगा। विदेशों में बनी चीजों का केवल इसीलिए त्याग करना कि ये विदेशों में बनी है, और परिस्थितियों अनुकूल न होने पर भी, अपने देश में ही उनका विनिर्माण करने के लिए राष्ट्रीय समय और धन का अपव्यय करना, मूर्खतापूर्ण और स्वदेशी की भावना को नकारना होगा।

स्वदेशी का सच्चा पुजारी किसी विदेशी के प्रति कभी मन में दुर्भावना नहीं पालेगा; वह दुनिया में किसी के प्रति विरोध की वृत्ति से प्रेरित नहीं होगा। स्वदेशी का अभियान घृणा फैलाने का अभियान नहीं है। यह निस्वार्थ सेवा का सिद्धान्त है जिसकी जड़ में विशुद्ध अहिंसा अर्थात् प्रेम है।[36]

इस प्रकार स्वदेशी की अत्यन्त स्पष्ट परिभाषा महात्मा गाँधी ने दे दी है, जिससे कि किसी तरह की भ्रांति या विभ्रम का कोई अवसर बचता नहीं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यवहार का एक सुस्पष्ट दिशा–निर्देश महात्मा गाँधी ने स्वदेशी की अपनी मीमांसा के द्वारा दे रखा है।

सन्दर्भ

1. हरिजन, 3.11.1946, पृष्ठ384।
2. हरिजन, 4.8.1946, पृष्ठ251–252।
3. हरिजन, 25.8.1946, पृष्ठ282।
4. हरिजन, 27.4.1947, पृष्ठ122।
5. हरिजन, 16.5.1936, पृष्ठ111–12।
6. हरिजन, 19.3.1946, पृष्ठ42।
7. हरिजन, 28.4.1946, पृष्ठ104।
8. हरिजन, 10.11.1946, पृष्ठ394।
9. हरिजन, 20.1.1940, पृष्ठ423।
10. हरिजन, 15.2.1935, पृष्ठ1।
11. हरिजन, 4.8.1940, पृष्ठ240।
12. हरिजन, 18.1.1922, पृष्ठ4।
13. हरिजन, 28.7.1946, पृष्ठ230।
14. उपर्युक्त।
15. उपर्युक्त।
16. हरिजन, 30.7.1938, पृष्ठ200।
17. हरिजन, 36.7.1942, पृष्ठ238।
18. वही।
19. हरिजन, 1.6.1947, पृष्ठ172।
20. यंग इण्डिया, 1.5.1930, पृष्ठ149।
21. यंग इण्डिया, 26.3.1931, पृष्ठ46।
22. यंग इण्डिया, 17.9.1919, पृष्ठ149–50।
23. हरिजन, 31.3.1946, पृष्ठ61।
24. यंग इण्डिया, 5.3.1931, पृष्ठ1।
25. संम्पादक डब्लू. पी. कबड़ी–इण्डिया केस फौर स्वराज्य, पृष्ठ276 (बम्बई 1932)।
26. हरिजन, 1.2.1942, पृष्ठ27।
27. महात्मा गाँधी के विचार, पृ0 395
28. महात्मा गाँधी के विचार, पृ0 395–396
29. वही, पृ0 396–397
30. स्पेचेज एण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी, (जी0ए0 नटेसन एण्ड कम्पनी मद्रास, 1933), चतुर्थ संस्करण
31. यंग इंण्डिया, 12–3–1925, पृ0 88,
32. वी0जी0 देसाई–'' फ्रॉम यरवदा मंदिर : आश्रम ऑब्जर्वेशन्स'' (नवजीवन पब्लिकेशन हाउस), पृ0 62–63
33. हरिजन, 23–7–1947 पृ0 79
34. स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी, (जी0ए0 नटेसन एण्ड कम्पनी मद्रास, 1933), पृ0 344
35. यंग इण्डिया, 17–6–1926, पृ0 218
36. वी0जी0 देसाई ''फ्राम यरवदा मंदिर, आश्रम ऑब्जर्वेशन्स : एम0के0 गाँधी'' पृ0 66